संपादकीय

उत्सवधर्मी भारत की सांस्कृतिक पहचान यहां के विविध कला रूपों में दृष्टिगोचर होती है। भारत एक समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का प्रज्ञाभाव है। यह प्रज्ञाभाव विविध प्रदर्शनकारी कलाओं में अभिव्यक्त होता है लोकनाट्य सहित अन्यान्य प्रदर्शनकारी कलाएं इसी भारतभाव को समाहित किए हुए हैं। लोकनाट्य किसी भी समाज के आधारस्तंभ के रूप में प्रचलित होते हैं। यह उस पूरे समाज के जीवनानुभवों को अपने में समाहित किए होता है। लोकनाट्य साहित्यशास्त्र के बने बनाए नियमों की कसौटी से अलग होते हैं। यह लोक की कसौटी पर कसे जाते हैं और उस पर यह खरे उतरते हैं। लोकनाट्य का देशज स्वरूप कलाकार, शैली या अभिनय को स्वाभाविकता देता है। भारतीय लोकनाट्य एक ओर संस्कृति के प्रमुख महाकाव्यों, पुराणों तथा गाथाओं से प्रेरणा ग्रहण करते हैं तो दूसरी ओर लोकनाट्य स्वाभाविकता, अभिनय और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता आदि का भी प्रतिनिधित्व करते हैं।

संस्कृत नाटकों के व्यवस्थित एवं नियमानुसार अनुशासित नाटकों को देखकर यह आभास होता है कि उससे पूर्व भी कोई लोकनाट्य परंपरा मौजूद रही होगी। यही नाट्य-परंपरा संस्कृत के नाटकों के विकास का कारण भी सिद्ध हुई तो वही लोक में भारतीय पारंपरिक लोकनाट्य की अनेक शैलियों में मुखरित होकर समाज का मार्गदर्शन करती रही। लोकनाट्य ने सदैव भारत रूपी शरीर में आत्मा बनकर उसकी संस्कृति और जनमानस को जीवित रखा। लोकनाट्य हमारे समाज में व्याप्त रामलीला, भाड़, नौटंकी, आल्हा, बिदेसिया, रासलीला, लौंडा नाच, विदापत नाच, झुमुर जैसे प्रचलित लोकनाट्यरूपों के माध्यम से भारतीय संस्कृति, उसके मूल्यों, संस्कारों, प्रज्ञा आदि को अक्षुण्ण रखे हुए है। लोकनाट्य वर्तमान समय में भी जीवन अभिव्यक्ति का या भारतीय समाज की अभिव्यक्ति का माध्यम बना हुआ है।

भारतीय समाज के इन्हीं जीवनानुभवों को 'भारतबोध पत्रिका' के इस अंक में समाहित करने का प्रयास अनेक विद्वतजनों ने किया है। आदिल सैफी ने 'नौटंकी' नामक लोकनाट्य का अध्ययन किया है। नौटंकी उत्तर भारत में अत्यंत लोकप्रिय रही है, किन्तु इसका प्रचलन हरियाणा, राजस्थान, और बिहार आदि क्षेत्रों में भी देखने को मिलता है। नौटंकी को देश के कुछ क्षेत्र में स्वांग, सांगीत और भगत आदि नामों से भी जाना जाता है। अनंत कुमार मिश्र ने लोकनाट्य 'झुमुरा' का विस्तृत विश्लेषण किया है। अंकिया के दो रूप माने जाते हैं। पहला वह जो इस शैली में बड़े नाटकों की रचना होती है, जिसे 'अंकिया नाट' कहते हैं। दूसरा वह जो अंकिया का संक्षिप्त रूप है, जिसे 'झुमुरा' कहा गया है। इस नाट्यरूप की रचना श्रीमंत शंकरदेव के शिष्य महापुरुष माधवदेव ने किया। 'झुमुरा' के अंतर्गत महापुरुष माधवदेव ने बाल कृष्ण के रूपों को प्रस्तुत किया है। झुमुरा की विशेषता यह है कि इसमें भगवान और भक्तों के बीच एक माधुर्य सम्बन्ध भी अभिव्यक्त हुआ है। झुमुरा में कृष्ण सम्बंधित प्रचलित कथाओं को विषय बना कर श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन हुआ है, जो लौकिक और माधुर्यसंपन्न प्रतीत होता है। अवंतिका सिंह ने अपने लेख

'रामलीला' में राम के जीवन से सम्बन्धित विभिन्न प्रसंगों के साथ रामलीला के संवाद का विवेचन किया है। अनिल कुमार ने 'बाउल परंपरा' का विश्लेषण किया है। बंगाल में बाउल परंपरा अपनी लोकधर्मिता के लिए जानी जाती है। बाउल हर तरह के सामाजिक बंधनों से मुक्त स्वच्छंद प्रकृति को स्वीकारते हैं। जब समाज में इन लोगों से सामाजिक मर्यादा का पालन करने के लिए लोग आग्रह करते हैं तो ये लोग अपने आपको बाउल बताते हैं अर्थात् ये कहते हैं कि हम समाज-व्यवस्था की दृष्टि से मृत हैं और मृत व्यक्ति पर समाज के रीति-नीति संबंधी नियम लागू नहीं होते। हमलोग तो 'ज्यंते मरा' अर्थात् जीवित ही मरे हुए हैं। अरविन्द कुमार मिश्र ने 'विदापत नाच' का उल्लेख किया है। सामान्य जनजीवन में विदापत नाच जैसी कलाएँ एक ऐसे उत्सव के रूप में हैं जिसके माध्यम से वे जीवन की वंचनाओं, तमाम तरह के दुःखों और अभावों को व्यक्त करते हुए उसी में एक अव्यक्त सुख की तलाश भी कर लेते हैं। अरविंद कुमार मीणा ने 'ख्याल' लोकनाट्य पर विचार किया है। कुछ विद्वान 'ख्याल' शब्द को लावनी से जोड़कर देखते हैं। इसका मुख्य कारण लावनी जब गायनमात्र की विधा रही तो इसे 'लावनी' कहा गया है किन्तु जब यह गायन और खेल प्रस्तुति की दृष्टि से मंच से जुड़ी तो 'ख्याल' नाम प्रचलित हुआ। इसलिए बहुत से विद्वान इसे केवल 'लावनी' या 'ख्याल' न कहकर 'ख्याल-लावनी' एक साथ कहते हैं। वस्तुतः ख्याल कल्पना और विचारों से उत्पन्न कवित्व रचना का ही दूसरा नाम है। 'संवादमूलक रामलीलाएँ: कथ्य और प्रदर्शन-विधान' नामक लेख में आशुतोष ने काशी की दो प्रसिद्ध रामलीलाओं 'रामनगर की रामलीला' और 'लाटभैरव की श्री आदि रामलीला' का विस्तृत वर्णन किया है। सात दिन से लेकर एक माह तक की अवधि में मंचित होने वाली रामलीलाएँ भारत की प्राचीन संस्कृति के सार्वभौमिक स्वरूप का दर्शन कराने में सर्वथा समर्थ हैं। परंपरागत रूप से मंचित होती आ रही रामलीलाओं के इतिहास को आप यदि खंगालना शुरू करेंगे तो पाएंगे कि इन रामलीलाओं ने समाज को सदैव दिग्भ्रमित होने से बचाया है। 'बिदेसिया' का वर्णन ऐश्वर्या झा ने किया है। भोजपुरी समाज की पीड़ा और उद्वेग ने ही बिदेसिया को जन्म दिया है। अपने पहली प्रस्तुति से ही बिदेसिया भोजपुरी क्षेत्र के नवयुवकों के पलायन एवं उनके विरह में नवविवाहिता स्त्रियों की तकलीफ का मार्मिक दस्तावेज बन गया था। बिदेसिया को पढ़ने देखने के बाद पलायन एवं प्रवास की समस्या मुखर रूप से सामने आती है। 'काशी का लोकरंग और भारतेंदु' नामक विषय पर ऋतु वाष्णेय गुप्ता ने अध्ययन किया है। कल्याण कुमार ने लोकनाट्य 'भवाई' का वर्णन किया है। 'भवाई' लोकनाट्य मुख्यतःउत्तरी गुजरात के कच्छ कठियावाड़ क्षेत्र में प्रसिद्ध है। समय परिवर्तन के साथ-साथ यह लोकनाट्य समग्र गुजरात, निकटवर्ती राजस्थान और मध्यप्रदेश के मालवा अचंल तक प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका है। राजस्थान और गुजरात की अपनी-अपनी विशिष्ट आंचलिकता की छाप 'भवाई' लोकनाट्य पर पड़ी है जो स्वाभाविक है। गौतम लामा के 'झुमुर' नामक लेख से पता चलता है कि झुमुर एक पूर्णांग संगीत है क्योंकि इसमें गीत, वाद्ययंत्र एवं नृत्य तीनों का समाहार मिलता है।

'स्वांग का स्त्री पक्ष' नामक लेख में चंद्रकला विवाह, परिवार और महिला की स्थिति का मूल्यांकन करती हैं। 'ब्रजभूमि की रासलीला' नामक लेख में पूनम शर्मा लिखती हैं कि कृष्णलीला का प्रदर्शन ब्रजक्षेत्र के ग्रामीण इलाकों में भाद्रमास में किया जाता है। जिनमें रासधारी अपनी मण्डली के साथ रासलीला का प्रदर्शन तिथिवार करते हैं। बलदेव छठ को बरसाने के पास कमई गांव में रास का आयोजन किया जाता

है। गाजीपुर, ऊँचागाँव में व्याहुला और भाद्रशुक्ल की त्रयोदशी-चतुर्दशी को बरसाने के पास बूढ़ी लीला होती है।

अंत में, करहला के पास मड़ोई गाँव में महारास का आयोजन किया जाता है जिसमें श्रीकृष्ण स्वरूप ठाकुर के ऊपर पाँच सेर सोने के मुकुट रखा जाता है। भाद्रशुक्ल अनंत चतुर्दशी के दिन लीलाकार्य समाप्त हो जाता है। 'पहाड़ी लोकनृत्य' के बारे में ममता कुमारी लिखती हैं कि उत्तराखंड गढ़वाल के लोकनृत्य जैसे पांडवनृत्य, लांग, भैलानृत्य, ऋतुनृत्य, चौंफुला, झुमेलो, छोपती, तांदीनृत्य, थड्या और स्वांग आदि नृत्य परम्पराएँ जीवित रही हैं। मुन्ना कुमार राय ने 'डोमकच' नामक विषय पर लेख लिखा है। नाट्य, नाच, खेल आदि रूपों में लोक प्रचलित डोमकच मिथिलांचल की लोकसंस्कृति के अभिन्न हिस्से के रूप में प्रवाहमान है। 'नाचा' का वर्णन करते हुए योगेंद्र चौबे लिखते हैं कि छत्तीसगढ़ी लोकपरम्परा की अमूल्य धरोहर है 'नाचा'। नाचा छत्तीसगढ़ के लोक जीवन की सहजता, उत्साह, पीड़ा, व्यथा, आर्थिक अभाव व समाज के दर्द का प्रतिनिधित्व करता है। 'पंजाब की लोकनाट्य परंपरा' के बारे में योजना कालिया ने वर्णन किया है। 'मैथिली रंगमंच' नामक लेख में राहुल सिद्धार्थ कीर्तनिया मैथिली नाट्यपरंपरा के बारे में लिखते हैं कि कीर्तनिया नाट्य-परम्परा में धूर्तसमागम, पारिजात हरण, गोरक्षा विजय, गौरी स्वंयवर, उषा हरण आदि प्रमुख नाटक माने जाते हैं। इस विधा के महत्वपूर्ण नाटककारों में ज्योतिरीश्वर ठाकुर, उमापति, विद्यापति, गोकुलनंद, हर्षनाथ झा शिवनंदन मिश्र आदि हैं। इन नाटकों के केन्द्रीय विषय भक्ति है तथा इनके आराध्य कृष्ण हैं। 'लोकनाट्य कठपुतली' नामक अपने लेख में रुचि शर्मा लिखती हैं कि भारत के राजस्थान प्रदेश की कठपुतली कला बहुत ही पुरानी और समृद्ध मानी जाती है। शोभा कौर ने 'नलदमयन्ती' लोकनाट्य का मूल्यांकन किया है। 'हरियाणवी सांग' का अध्ययन सरिता ने किया है। हरियाणा में सांग परम्परा का आरम्भ लगभग 1730ई के आसपास माना जाता है। किशन लाल भाट इसके सूत्रधार माने जाते हैं। तत्पश्चात बंशीलाल सांगी, अलीबख्श सांगी, पंडित नेतराम, पंडित दीपचंद, हरदेवा सांगी, बाजे भगत, लख्मीचंद, धनपत सिंह, पंडित रामकिशन व्यास, हुश्यार प्यारे और मांगेराम सांग के क्षेत्र में काफी प्रसिद्ध नाम रहे हैं। कुछ प्रसिद्ध सांगो की श्रृंखला में पद्मावत, प्रहलाद भगत, हीर-रांझा, पूरण भगत, राजा भोज, हरिचन्द्र, गोपीचंद-भरथरी, चंदकिरण आदि आते हैं। कवि 'ईसुरी के प्रस्तुति विधान' के बारे में साधना कुशवाहा ने लिखा है कि ग्रामीण संस्कृति की सुन्दरता उसके प्रेमपूर्ण रूप का इतिहास ईसुरी के फागों से जाना जा सकता है। इन फागों में प्रेम, करुणा, श्रृंगार, सहानुभूति, प्रेम की पीड़ा, हृदय की अवस्था और अनुभूतियों का जीवंत चित्रण है। 'कुमाऊँ-गढ़वाल की लोकनाट्य विरासत' नामक लेख में सारिका कालरा ने लिखती हैं कि 'भड़ा' का वर्णन किया है। इसे कुछ अंचलों में 'भड़ौली' भी कहा जाता है। इस एकल नृत्य को प्रस्तुत करने वाले को 'भाट', रैभाट', 'रणच्या', तथा 'दमै' कहा जाता है। इसमें अभिनयकर्ता वीरों अथवा राजाओं की प्रशस्ति का गान करता है। अभिनय करने वाले पात्र की वेशभूषा में उसके सिर पर पगड़ी और शरीर पर एक लंबा झगुला, अंगिया और चूड़ीदार पजामा होता है। सूर्य प्रकाश पाण्डेय अपने लेख 'संस्कृत का रंगमंच और सिनेमा' में संस्कृत रंगमंच और सिनेमा के संबंध का मूल्यांकन किया है। 'नरसी भगत भाट' नामक लेख में सरोज बाला ने लिखा है कि लोकगीत गीत के प्रमुख रूपों में से एक हैं और हमारे

जीवन का अभिन्न अंग हैं। साथ ही बताया है कि गीत हमारे आसपास प्रचलित सामाजिक और सांस्कृतिक परंपराओं और रीति-रिवाजों के भी दर्पण होते हैं।

लोकनाट्य पर केंद्रित 'भारतबोध पत्रिका' का यह अंक आपके समक्ष है। मन करे तो पढ़िएगा।

आभार।

संपादक

आचार्य (डॉ.) चन्दन कुमार